24.2.3 केन्सोत्तर विचारधारा

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा युद्धोत्तर काल में लोक ऋण के परिमाण में अत्यधिक वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय लोक ऋण की मात्रा जो 1940 में $ 50.9 बिलियन थी, 1946 में बढ़कर $ 259.5 बिलियन तथा 1960 में $ 290.4 बिलियन हो गयी। लोक ऋण के विशाल आकार को देखते हुए अर्थशास्त्रियों ने इसके विषय में फिर से सोचना शुरू किया। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप केन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने लोक ऋण की पारम्परिक धारणा के अन्तर्गत केन्सीय अर्थशास्त्र द्वारा लाए गए अधिकांश सुधारों को स्वीकार किया, लेकिन लोक ऋण के प्रबन्ध तथा लोक ऋण एवं मुद्रा पूर्ति के अन्तर-सम्बन्धों पर विशेष ध्यान देने की बात कही।

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आन्तरिक ऋण के कारण कर तथा ऋण सेवा के रूप में हस्तान्तरण भुगतान कई क्रमों में होते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के ख्याल से वे एक-दूसरे को निरस्त (cancel) कर देते हैं। किन्तु, लोक ऋण के विशाल आकार को बिना किसी महत्व का बताकर टाला नहीं जा सकता। अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह विचार व्यक्त किया कि आज का ऋण कल के लिए भार बन जाएगा। (अध्याय 25 को भी देखें।)

लोक ऋण के सम्बन्ध में वर्तमान धारणा क्लासिकल विचारधारा को पूर्णरूप में अस्वीकार नहीं करती है। यह स्वीकार किया जाता है कि जब बेरोजगारी बड़े पैमाने पर विद्यमान रहती है, तब लोक ऋण के कारण निजी क्षेत्र साधनों से वंचित नहीं होता, किन्तु यह स्वीकार नहीं किया जाता कि पूर्ण रोजगार के समय सरकार द्वारा ऋण लेने से मुद्रा-स्फीति का सृजन होगा ही। सभी कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि ऋण के [द्वारा] उन साधनों को प्राप्त किया जाता है जिनका उपयोग इसकी अनुपस्थिति में उपभोग पर किया जाता तो [तुलना] में अधिक स्फीतिजनक नहीं हो सकता। विशाल मात्रा में लिया गया आन्तरिक ऋण कई ... है। यह मौद्रिक नीति को जटिल बनाने के साथ-साथ प्रबन्ध की कठिनाइयों को जन्म ... सन्तुलन के सम्बन्ध में भी हमारी धारणा में बदलाव आया है। बजट में

24.2.1 के...

इस विचारधारा क...

के दृष्टिकोण शामिल हैं।

आर्थिक सन्तुलन की धारणा बिल्कुल बेकार नहीं है। राष्ट्रीय आर्थिक बजट एक महत्वपूर्ण धारणा है। ऐसे बजट में सरकारी बजट के कार्यकलापों की तुलना में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मस्ग्रेव ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि राजस्व बजट में लोक व्यय की वित्त-व्यवस्था कर आय के द्वारा की जानी चाहिए, जबकि पूंजी बजट में यह ऋण के द्वारा होनी चाहिए। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं है कि बजट में कोई घाटा हो ही नहीं।

क्लासिकल तथा केन्सीय दोनों दलों के अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि आन्तरिक एवं बाह्य ऋण में अन्तर करना चाहिए। बाह्य ऋण के कारण ऋणकर्ता देश को घरेलू उत्पादन से अधिक मात्रा में वस्तुओं को खरीदने का अवसर मिलता है। इस प्रकार बाहरी ऋण से यह सम्भव होता है कि पारिवारिक एवं व्यावसायिक व्यय को विस्थापित किए बिना ही सरकार अपने व्यय के लिए वित्त जुटाए। किन्तु, बाह्य ऋण पर ब्याज के भुगतान तथा मूलधन की वापसी के समय साधनों का विदेशों में स्थानान्तरण होता है, जबकि घरेलू ऋण की स्थिति में इन कार्यों के लिए देश के निवासियों के मध्य क्रय शक्ति का केवल पुनर्आबंटन होता है। बाहरी ऋण पर ब्याज का भुगतान तभी सम्भव है जब सरकार और अधिक कर्ज ले या अनुदान प्राप्त करे या अधिक निर्यात करे (अर्थात् उपभोग तथा घरेलू विनियोग पर घरेलू उत्पादन की तुलना में कम वस्तुओं का उपयोग करे।) कुल बाहरी कर्ज कम तभी हो सकता है जब सरकार अनुदान प्राप्त करती है या निर्यात अधिक करती है या कर्ज भुगतान करने से इन्कार कर देती है। स्पष्ट है कि बाह्य ऋण को प्राप्त करने या इसके पुनर्भुगतान के लिए जिन विषयों पर विचार करना चाहिए वे आन्तरिक ऋण से अलग हैं।

मौजूदा धारणा (Current Attitude)

राजा चेल्याह का कहना है कि 1980 के दशक से लोक ऋण में वृद्धि को खतरनाक समझा जाने लगा। इसका कारण है लोक ऋण में वृद्धि के कारण निजी निवेश में कमी। किन्तु, दूसरा एवं अधिक महत्वपूर्ण कारण यह मान्यता है कि लोक ऋण के वित्त पोषण के आधार पर किया गया अधिकांश लोक व्यय अनुत्पादक पाया गया है। 1987 में पोजनर (Michael Posner) ने स्पष्ट रूप से बताया कि मन्दी के समाधान के लिए अनुत्पादक पूंजी परियोजनाओं (unproductive capital projects) पर केन्स ने लोक व्यय में जिस असीमित वृद्धि की बात कही वह सहने योग्य नहीं है।[1] लोक ऋण का वह भाग चिन्ता का विषय है जिस पर ब्याज चुकाने के लिए पूर्ण रूप से या अधिकांश में कर राजस्व पर निर्भर करना पड़ता है। इसी सन्दर्भ में डान्डेकर (V. M. Dandekar) का कहना है कि जब ब्याज का भुगतान उधार लेने की क्षमता को पार कर जाता है, देश ऋण जाल (debt trap) में फंस जाता है। (*Economic and Political Weekly*, April 10, 1993, p. 691)।

चेल्याह का कहना है कि निम्न उद्देश्यों के लिए लोक ऋण को उचित समझा जा सकता है :

(i) कर की दर के उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए लोक ऋण की आवश्यकता हो सकती है। अलाभकर पूंजी निर्माण व्यय अक्सर भारी मात्रा में करना होता है। यदि ऐसे लोक व्यय का वित्त पोषण कर राजस्व से किया जाए तो कर की दर ऐसे पूंजी निर्माण व्यय के वर्ष में अधिक होगी तथा उस वर्ष में यह दर कम होगी जिस वर्ष ऐसा व्यय नहीं होगा। न केवल कर की दर ही कभी अधिक और कभी कम होगी, बल्कि ऊंची दर के वर्ष में ऐसी दर विकृति (distortion) पैदा करेगी। अतः ऐसे पूंजी निर्माण का वित्त पोषण लोक ऋण के माध्यम से करना उचित होगा। उचित यह भी होगा कि ऐसी परियोजना (project) के जीवनकाल में ही ऋण का भुगतान कर दिया जाए। यदि ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो ऐसी परिसम्पत्ति (asset) की फिर से स्थापना (replacement) के लिए पर्याप्त मूल्य-ह्रास (depreciation) का प्रावधान किया जाए।

(ii) आर्थिक स्थिरता के लिए औद्योगिक देशों में चक्रीय मन्दी या बेरोजगारी को समाप्त करने में घाटे के वित्त पोषण का उपयोग किया गया है। इसलिए लोक ऋण के माध्यम से लोक व्यय में वृद्धि करना उचित ठहराया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

(iv) यों तो वैसे चालू व्यय के वित्त पोषण के लिए भी लोक ऋण को उचित ठहराया जा सकता है जिससे किसी भौतिक पूंजी का निर्माण तो नहीं होता है, किन्तु मानवीय पूंजी का निर्माण होता है या निजी पूंजी की उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(v) लाभकर पूंजी निर्माण के लिए भी सरकार द्वारा ऋण लेना उचित ठहराया जा सकता है। निजी के लिए उधार देने के लिए सरकार ऋण ले सकती है। अल्पविकसित देशों में पूंजी बाजार के विकसित न होने के कारण सरकार के लिए ऋण लेकर शेयर खरीदना भी उचित ठहराया जा सकता है।

चेल्याह का कहना है कि भारत जैसे विकासशील देशों के लिए आदर्श स्थिति वह होगी जहां कर एवं गैर-कर राजस्व से आर्थिक सहायता (subsidy), अन्य हस्तान्तरण व्यय (other transfer expenditures), ऋण का भुगतान तथा चालू व्यय के अधिकांश का वित्त पोषण होता है तथा लोक ऋण का उपयोग सरकार के अलाभकर पूंजी निर्माण, सामाजिक पूंजी तथा उत्पादकता में वृद्धि करने वाले व्यय तथा वित्तीय निवेश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए होता है।[1]

रिचर्ड गूड[2] का कहना है कि आन्तरिक ऋण अधिकांशतः व्यावहारिकता (expediency) का परिणाम है क्योंकि सरकार कर लगाना ही अधिक पसन्द करती है, किन्तु ऐसा करना असुविधाजनक पाती है। पारम्परिक धारणा यह है कि निवेश व्यय (investment expenditure) का वित्त पोषण ऋण के द्वारा करना चाहिए, उपभोग व्यय (consumption or current expenditure) का नहीं। गूड कहते हैं कि यह पारम्परिक विचारधारा निजी उद्यम (private enterprise) के वित्त पोषण की गलत उपमा (analogy) पर आधारित है। सरकार को समष्टि आर्थिक आवश्यकता (micro-economic considerations) के अनुसार ही लोक ऋण के औचित्य को तय करना चाहिए। ऐसा मान लेना उचित नहीं होगा कि विनियोग व्यय के वित्त पोषण के लिए लोक ऋण हमेशा बेहतर होता है। पारम्परिक धारणा की एक कमजोरी यह है कि वह मान लेती है कि विनियोग हमेशा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है तथा लोक उपभोग (public consumption) विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। वास्तविकता यह है कि सभी पूंजी व्यय आर्थिक विकास को प्रोत्साहित नहीं करता है और न ही सभी चालू व्यय अनुत्पादक होता है। इसलिए लोक ऋण के सम्बन्ध में ऐसा कहना अधिक उचित होगा कि सरकार को उपभोग व्यय के लिए ऋण लेने से बचना चाहिए। (''Avoid borrowing to pay for government consumption expenditures.'')

Scanned with CamScanner